संत कबीर की “उल्टबाँसी” को समझने के लिए एक संक्षिप्त एवं सरल लेख

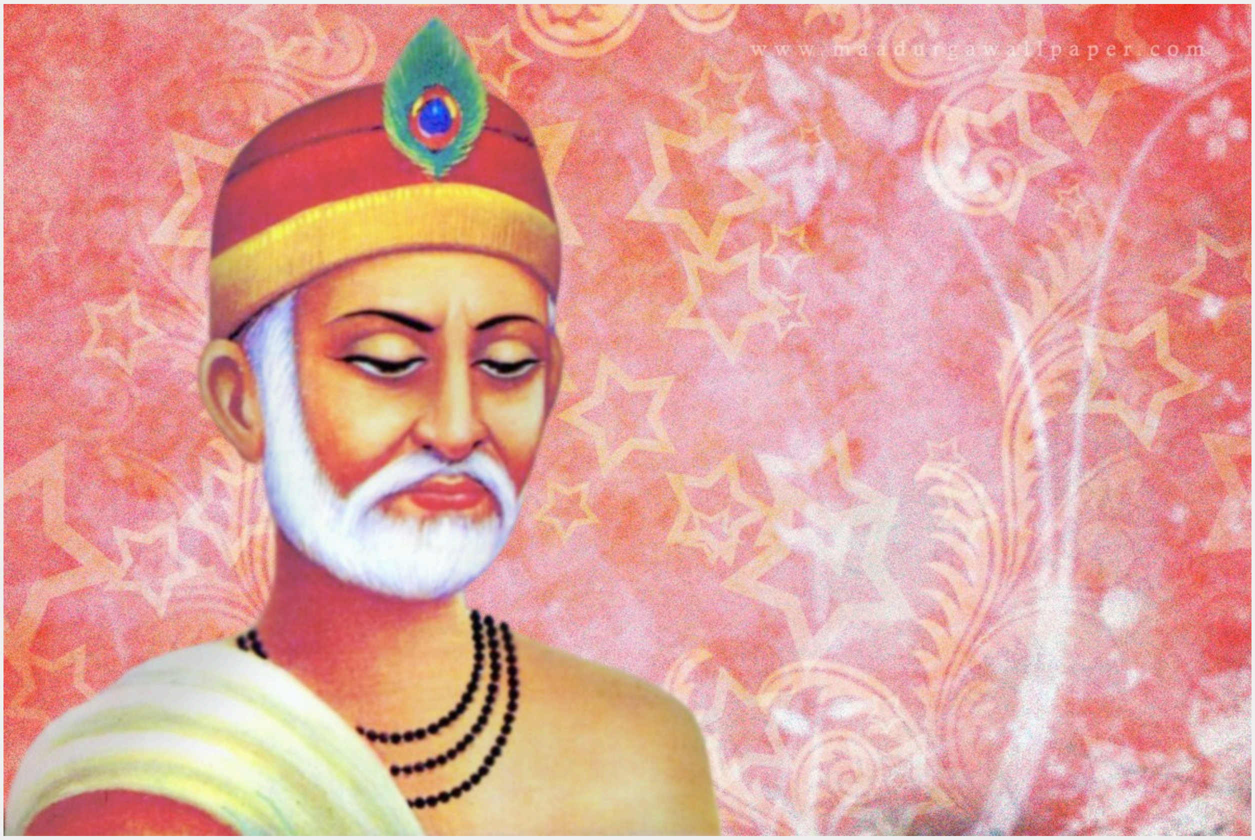

लेख में उल्टबाँसी और उल्टबासी Interchangeably प्रयोग किया गया है, दोनों का अर्थ एक ही है।

उल्टबासी कहने की परंपरा वैदिककाल से चली आ रही है। सर्वप्राचीन ग्रंथ ऋगवेद में भी इसके प्रयोग देखने में आते हैं लेकिन आधुनिक काल में यह परंपरा पूरी तरह से लुप्त हो चुकी है। ऑनलाइन रिसर्च से उलटबाँसी शब्द के निम्नलिखित अर्थ बताए गए हैं :

1. उल्टबाँसी = उल्टा अंश या उल्टी बातें।
2. उल्टबाँ-सी, उलटवाँ-सी या उलटवा-सी = उलटी हुई सी।
3. उल्टवाची = उलटी वाणी। उलटी कही गई सी।
4. उल्टवासी = उलटा निवास करनेवाला। अर्थात् लौकिक कथनों में अलौकिक भाव का वास।

“उल्टबाँसी” के शाब्दिक अर्थ में जाकर व्यर्थ में उलझनों के सिवाय कुछ भी नहीं मिलेगा,जैसे-जैसे इस लेख की चर्चा चलेगी अर्थ स्वयं ही समझ आता जायेगा।
संत कबीर के विशाल साहित्य में उल्टबासीओं का बहुत ही प्रचलन है। बड़े ही आदर सम्मान के साथ कहने में कोई हर्ज़ नहीं है कि कबीर साहिब सब प्रकार से उल्टे ही हैं। उनका देखना भी उल्टा और कहना भी उल्टा है।

“सब कहते कागद की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी।।”

कबीर साहब पारंपरिक पोथियों के ज्ञाता नहीं थे लेकिन जीवनरूपी पोथी को जितना उन्होंने पढ़ा था, उतना शायद ही किसी और ने पढ़ा हो। यह बात हमारे गुरुदेव पर भी फिट बैठती है।

दुनिया के पास केवल लौकिक (चमड़े की,भौतिक) आँखें होती हैं इसीलिए मनुष्य कागद (कागज़) की लेखनी की बात करता है। कबीर साहब के पास दैहिक आँखों के अलावा “ज्ञान की आँखें” भी हैं इसीलिए वे कागद की लेखी की नहीं, आँखन देखी बातें, ज्ञान की बातें

कहते हैं। अज्ञानी मनुष्य तो उसी पर विश्वास करेगा जो सामने कागज़ पर लिखा हुआ है क्योंकि वह प्रत्यक्षवादी है,भौतिकवादी है। आत्मा के स्तर तक पंहुच पाना उसके लिए कहाँ सम्भव है?

यही कारण है कि कबीर साहब जब ऐसी बातें कहते हैं तो उनकी बातें हमें उल्टी प्रतीत होती हैं।

“कबीरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ। जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ॥”
इस दोहे को देखकर तो ऐसा अर्थ दिख रहा है कि कबीर जी घर जलाने की बात कर रहे हैं, कौन सुनेगा उनकी बात ? तो हुई ने सांसारिक जीवन से अलग बात?
लेकिन कबीर जी समझाते हुए कहते हैं:
मैं तो समाज के बीच, यानि संसार के बाजार में जलती मशाल (वैराग्य, ज्ञान) लेकर खड़ा हूँ। जो व्यक्ति अपने "घर" यानि अपने अहंकार, लोभ, मोह, कामना और स्वार्थ को खुद ही जलाने को तैयार है, वही मेरे साथ चल सकता है। दूसरे शब्दों में, सच्चे अध्यात्म की राह में वही चल सकता है जो अपने पुराने, झूठे "मैं,अहम्” को जला सके, जो अपने भीतर की दुनिया बदलने को तैयार है, वही सच्चे अर्थ में कबीर की संगति कर सकता है। यह दोहा त्याग, आत्मविनाश (अहंकार का), और सच्चे ज्ञान की ओर प्रेरित करता है। यहाँ पर कबीर साधारण जीवन नहीं, बल्कि एक पूर्ण रूप से जाग्रत, तपस्वी और निर्लिप्त जीवन की बात कर रहे हैं। जो केवल वही अपना सकता है, जो "अपने भीतर की दुनिया" को जलाने को तैयार हो।
दुनिया की दृष्टि में शब्द बड़े हैं, पोथियाँ बड़ी हैं और पोथियों के आगे जीव का कोई मोल नहीं है लेकिन कबीर साहब के लिए जीव से बढ़कर कोई नहीं है।

कबीर साहब की यह दृष्टि हमें उल्टी लगती है लेकिन ध्यान दीजिए: कबीर साहब के लिए पंडित कोई वर्ण या जाति नहीं है। पोथियों पर विश्वास करने वाला हर पोथीजीवी व्यक्ति पंडित है। पंडित शब्दों के जादूगर होते हैं। उनके शब्द बड़े सम्मोहक होते हैं।

भााषा विज्ञानियों ने कहा है कि यह शब्द ही हैं जो मनुष्य का शोषण भी करते हैं और वाहवाही भी लुटाते हैं, शासन भी कराते हैं।

एक कहावत प्रचलित है: मन हरे वो धन हरे। कोई ठग जब किसी को ठगता है तो पहले उसे अपने शब्दों के जाल में उलझाता है, अपने शब्दों से उसे बाँधता है, उलझाने वाला पहले उसके मन का हरण करता है, उसे सम्मोहित करता है। सम्मोहित व्यक्ति वही करता है जैसा सम्मोहनकर्ता चाहता है। सदियों से हम सब पंडितों के "शब्दों के सम्मोहन" के प्रभाव में,बिना किसी तर्क के उनकी बातें सुने जा रहे हैं। उनकी झूठी बातें भी हमें सच्ची लगती हैं। ऐसा करके वह अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं और मनुष्य को बुद्धू बनाये जा रहे हैं। वे कहते हैं कि पोथियों की रचना ईश्वर ने की है एवं उन पर ईश्वर के हस्ताक्षर हैं। कितना बड़ा झूठ है।

अगर कोई यह कहे कि भाषा की रचना ईश्वर ने नहीं की है यह समाज की रचना है। पोथियों की रचना ईश्वर ने नहीं की है, यह समाज के पंडितों की रचना है जिसे पण्डितों ने हमें ठगने के लिए बनाया है, तो लोग उसे पागल कहेंगे। यदि किसी अनपढ़ किसान और मजदूर से कहा जाए कि पोथियों का ज्ञान खोखला है क्योंकि वह अनुत्पादक है। पोथियों का ज्ञान आत्मा के अन्न का एक दाना भी पैदा नहीं कर सकता और जो ज्ञान किसी को जीवन नहीं दे सकता वह मोक्ष क्या देगा। यदि ज्ञान उत्पादक है तो वह आत्मा का अन्न पैदा करता है, जीवन देता है, इसलिए आत्मा का ज्ञान मोक्ष देने वाला है।

हमारे साथिओं के मन में एक बहुत ही तर्कशील प्रश्न उठ रहा होगा कि हमें ज्ञानप्रसाद का ज्ञान शब्दों से,पोथिओं से, गुरुदेव की पुस्तकों से ही तो मिल रहा है तो क्या शब्दों से भरे यह लेख हम सबको सम्मोहित कर रहे हैं ? क्या गुरुदेव के साहित्य से हमें कोई उल्टी शिक्षा मिल रही है ?कदापि नहीं !!! ऐसा सोचना अज्ञानतावश ही हो सकता है, यही कारण है कि हमेशा गुरुसाहित्य को अंतर्मन में उतरने का ही अनुरोध किया जाता रहा है। हम तो कई बार असमंजस में पड़ जाते हैं कि गुरुदेव कहना क्या चाहते हैं। यही बात कबीर जी की उल्टबासिओं में भी है, कबीर जी और गुरुदेव एक ही तो हैं।

ईश्वर अनुभव करने का विषय है। ईश्वर तो शब्दों से परे है। ईश्वर को ईश्वर की बनाई हुई भाषा और उसी के बनाये धर्म से पाया जा सकता है। ईश्वर की बनाई हुई भाषा “प्रेम” है और ईश्वर का बनाया हुआ धर्म “करुणा” है। ईश्वर को केवल इसी से पाया जा सकता है। कबीर साहब जब ऐसा कहते हैं तो वे हमें उल्टे लगते हैं क्योंकि हम सब तो शब्दों को, पोथियों को और उन्हीं की भाषा को,धर्म मानकर बैठे हुए हैं। मनुष्य की विडंबना है कि वह ईश्वर को शब्दों के द्वारा, पोथियों के द्वारा पाना चाहता है।

कबीर साहब का रास्ता उल्टा है। उल्टे रास्ते पर चलने वाले की चाल और दिशा भी उल्टी ही होगी। इसीलिए कबीर साहब की हर बात उल्टी लगती है, उल्टबाँसी लगती है। वे कहते हैं –

“पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।“

पोथी पढ़कर, शब्दों को रटकर, कोई पंडित नहीं हो सकता। जब ईश्वर को पाने के लिए मात्र ढाई अक्षर (प्रेम) ही पर्याप्त हैं, तो फिर पोथी को सिर पर लादने से क्या फायदा? पोथी की क्या जरूरत है। कबीर के

लिए केवल ढाई अक्षर ही महत्वपूर्ण हैं, बाकी सब बेकार हैं। मनुष्य के लिए प्रेम के अनमोल ढाई अक्षर का कोई मोल नहीं है।

यदि इतनी सी बात समझ आ जाए तो व्यक्ति और व्यक्ति के बीच,परिवार और परिवार के बीच,समाज और समाज के बीच, देश और देश के बीच कोई समस्या ही न रहे, सम्पूर्ण विश्व स्वर्गमय हो, यही है परम पूज्य गुरुदेव का धरती पर स्वर्ग के अवतरण का स्वप्न,इसे हम बच्चों ने ही "प्रेम" के सूत्र से सफल बनाना है।

कठिन चीजें, जटिल चीजें, सजावटी चीजें, चमकीली चीजें, रोमांच पैदा करने वाली थ्रिलर चीजें मनुष्य को लुभाती हैं, यही उसकी प्रवृति है। सीधी, सरल, सुगम और सादी चीजें उसे पसंद नहीं आती।

कबीर साहब को दुनिया के उल्ट सीधी, सरल, सुगम और सादी चीजें पसंद थीं। इसीलिए वह उल्ट लगते हैं। कबीर के अनुसार पत्थर की मूर्तियों और उनकी पूजा बोझ है। जब वे इस धारणा को त्यागते हैं और हमें भी त्यागने के लिए कहते हैं तो हमें उनकी बातें उल्टी लगती हैं। जीवन भर मनुष्य सिर पर इस बोझ को लादकर चलता है।

कबीर जी की बहुप्रचलित व्यक्तिगत घटना यहाँ शामिल करना बहुत ही उचित लग रहा है।

लोग मोक्ष की चाह में काशी जाते है लेकिन कबीर साहब काशी छोड़कर 200 किलोमीटर मगहर जाते हैं। कबीर ने मगहर को इसलिए चुना क्योंकि उस समय मान्यता थी कि काशी में मरने से स्वर्ग और मगहर में मरने से नरक मिलता है। कबीर जी इस अंधविश्वास को तोड़ना चाहते थे। वे यह साबित करना चाहते थे कि मोक्ष स्थान से नहीं, बल्कि कर्मों और भक्ति से मिलता है, और अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपना अंतिम समय मगहर में बिताया और वहीं शरीर त्याग दिया, जहाँ उनकी समाधि और मज़ार आज भी साथ-साथ हैं, जो हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक है। समाधि और

मज़ार मात्र 100 मीटर ही दूर हैं। कबीर जी का यह कदम तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक पाखंड पर एक बड़ा प्रहार था, जिसमें लोग स्थान के आधार पर स्वर्ग-नरक की कल्पना करते थे।

इस तरह, कबीर ने मगहर जाकर यह संदेश दिया कि भक्ति और निर्मल मन ही मुक्ति का मार्ग है, न कि कोई भौगोलिक स्थान।

ऐसा लगता है कि कबीर साहब की वाणियों और दोहों को पहली बार उल्टबासी कहने वाला मनुष्य ज़्यादा पढ़ा लिखा नहीं रहा होगा। ऐसा नहीं लगता कि उसने यह शब्द   विवेकपूर्वक कहे होंगें। अज्ञान में ही सही, अविवेक में ही सही,इतना तो सत्य है कि कबीर साहब को आज तक सही-सही कोई भी समझ नहीं पाया है। कबीर साहब का सही मूल्यांकन आज तक किसी ने नहीं किया है। इसीलिए कहा जा सकता है कि जिस किसी ने भी कबीर जी को उल्टबासी कहा वह अज्ञानी ही रहा होगा क्योंकि ज्ञानियों ने तो कबीर को नकार दिया है।

कबीर साहब उल्टबासी थे और हम लोग हैं केवल “बासी”। “बासी” का अर्थ तो सभी जानते हैं, जो ताज़ा न हो,जैसे कि “बासी रोटी।” उल्टबासी का भी अर्थ समझने के लिए बासी रोटी वाला उदाहरण बहुत ही सरल है।

बासी वह है जो ताज़ा न हो, जो उपयोग करने लायक न हो और धोखे से भी यदि उसका उपयोग हो जाये तो उपयोग करने वाला बीमार हो जाये। यदि बासी का उल्ट ताजा, उपयोगी, स्वास्थ्यवर्धक होता है, तो मृत का उल्ट अमृत होना चाहिए।

इतने सीधे और सरल तरीके से केवल कबीर ही समझा सकते हैं। इस तरह सब अज्ञानी मृत और बासी हैं और ज्ञानी कबीर जी अमृत और ताज़ा हैं ।

यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि मृत शब्द का विरुद्धार्थी शब्द जीवित

होता है लेकिन कबीर जी के लिए मृत शब्द को विरुद्धार्थी शब्द के रूप में "अमृत" शब्द का प्रयोग किया है, जीवित का नहीं।

ऐसा क्यों?

ऐसा इसलिए कि जिसने (आत्मा) जन्म ही नहीं लिया हो वह मरेगा कैसे? जहाँ जन्म ही नहीं हो, वहाँ मृत्यु कैसी ? जन्म-मरण से जो परे हो उसे "आत्मा" ही तो कहते हैं ।

आइए इस चर्चा का समापन कबीर जी के एक और दोहे को समझते हुए करते हैं :
"कबीरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय। आप ठगे सुख होत हैं, और ठगे दुख होय।।"
आप अपनेआप को भले ही ठगाते रहो लेकिन किसी को ठगो मत। ठगे जाने पर सुख मिलता है, ठगने से दुःख। कितनी उल्टी बात लगती है कि ठगा हुआ व्यक्ति सदा सुखी रहेगा है और ठगने वाला सदा दुःखी रहेगा।

एक अनपढ़ व्यक्ति ने इसका भेद बताया: जो पाप करेगा, वह तो भुगतेगा ही क्योंकि जैसी करनी वैसी भरनी, लेकिन ठगा हुआ व्यक्ति सुखी कैसे?

एक पढ़े-लिखे व्यक्ति ने कहा:ठगने वाला कब तक बचा रहेगा। कभी न कभी कानून की पकड़ में तो आयेगा ही। जेल में तो उसे चक्की ही पीसनी पड़ेगी।

एक समझदार व्यक्ति ने कहा:कबीर साहब तो फकीर ठहरे। उनके पास तो संपत्ति के नाम पर केवल एक ही चीज़ थी और वह था, ज्ञान। वह तो चाहते थे कि कोई आकर उनके ज्ञान को ठग ले। ज्ञान तो बाँटने से और अधिक बढ़ता है लेकिन ठग को ज्ञान से क्या लेना, वह तो धन चाहता है।

कबीर के लिए तो पूरी दुनिया ईश्वरमय थी। उन्हें तो हर प्राणी में ईश्वर के ही दर्शन होते थे। वे तो बाजार में चदरिया बेचने का काम करते थे। ग्राहक उन्हें ईश्वर जैसे ही दिखते थे और ठगने वाला जब ईश्वर हो तो ठगाने वाला खुश कैसे नहीं होगा?

लेकिन इस सच्चाई को समझ पाना इतना सरल नहीं है।

कबीर साहब दुनिया के तिलकधारी साधुओं को,शब्दों के बंधन में जकड़े साधु वेषधारी महाठगों को देखते होंगे, जो पोथियों के शब्दों के बल पर, स्वर्ग-नर्क का डर दिखाकर, लोंगों को ठगते हैं। तब उन्होंने कहा होगा :

“कबीरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय। आप ठगे सुख होत हैं, और ठगे दुःख होय।”

कोई भी विवेकवान और विचारवान व्यक्ति दूसरों को ठगकर कभी सुखी नहीं हो सकता

धन्यवाद, जय गुरुदेव